

अशुभ : एक दृष्टिकोण

डॉ० शुचि तिवारी ¹

प्राप्ति: 12 सितम्बर 2026 / संशोधित: 17 सितम्बर 2026 / स्वीकृत: 19 सितम्बर 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 29 सितम्बर 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

‘अशुभ’ दर्शनशास्त्र की एक महत्वपूर्ण समस्या है, जिसका संबंध दुःख, अभाव, पीड़ा, अनैतिकता तथा मानवीय जीवन की विसंगतियों से है। प्रस्तुत आलेख में ‘शुभ’ और ‘अशुभ’ की अवधारणाओं का भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक दृष्टिकोणों से विवेचन किया गया है। सुकरात, काण्ट, जी. ई. मूर, ऑगस्टाइन तथा विशेष रूप से श्री अरविन्द के विचारों के आधार पर अशुभ की प्रकृति, उत्पत्ति और प्रयोजन को समझने का प्रयास किया गया है। आलेख में प्राकृतिक एवं नैतिक अशुभ के स्वरूप तथा उनके पारस्परिक संबंधों का भी विश्लेषण किया गया है। श्री अरविन्द के अनुसार अशुभ को मानव की सीमित दृष्टि और चेतना के अपूर्ण विकास के संदर्भ में समझा जा सकता है; विकास की उच्चतर अवस्था में यही अशुभ शुभ में रूपांतरित होने की संभावना रखता है। निष्कर्षतः अशुभ केवल नकारात्मक सत्ता नहीं, बल्कि मानव चेतना, नैतिकता और आध्यात्मिक विकास से जुड़ी एक जटिल दार्शनिक समस्या है।

प्रमुख शब्द: अशुभ, शुभ, प्राकृतिक अशुभ, नैतिक अशुभ, नैतिकता, श्री अरविन्द, मानव चेतना।

क्या है अशुभ ?

साधारणतया जनमानस की भाषा में कह सकते हैं कि जो हमारे लिए शुभ नहीं है वह अशुभ है। इसका अर्थ यह है कि अशुभ को समझने के लिए और व्याख्यायित करने के लिए सर्वप्रथम शुभ को समझना होगा। ‘शुभ’ वह शब्द है जो अपने आप में बहुत से भाव छिपाए हुए है। यह ‘शुभ’ कल्याण, हर्ष, उल्लास, लाभ, प्रगति, उन्नति, प्रशंसा आदि मनोभावों को समेटे हुए है। शुभ दर्शनशास्त्र में ऐसा भाव है जो व्यक्ति और समाज के समस्त प्राणियों के कल्याण, उन्नति, सदाचार एवं नैतिक जीवन की परिकल्पना को स्पष्ट करता है। शुभ के लिए किए जाने वाले कर्म लोकमंगल की भावना से किए जाने चाहिए। कल्याणकारी, सद्गुणयुक्त जीवन की प्राप्ति में शुभ कार्यों की उपस्थिति वांछनीय है।

शुभ की परिभाषा अनेक विद्वानों और दार्शनिकों ने अपने भिन्न-भिन्न विचारों से प्रस्तुत किए हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।¹

अहिंसा परमो धर्मः।²

भारतीय परम्परा में मानव कल्याण को सर्वोपरि रखते हुए ऐसे शुभ की कल्पना की गयी है जिससे सम्पूर्ण मनुष्य जाति का कल्याण हो। सभी सुखी हो। सभी पुण्य के भागीदार हो। सबका कल्याण समाज का कल्याण है। जो कर्म, सत्य, अहिंसा, दया, न्याय और लोकमंगल की कसौटी पर खरा उतरता है, वास्तव में वही शुभ कर्म है। ऐसी कामना के लिए हमारा ज्ञान भी उस स्तर का होना चाहिए इसलिए ‘सुकरात’ कहते हैं कि “ज्ञान ही सद्गुण है”, अर्थात् ज्ञान ही शुभ है।

1 सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, जी० जे० कॉलेज, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

✉ डॉ० शुचि तिवारी, E-mail: shuchi.tiwari27@gmail.com

अतः ऐसा ज्ञान जो नैतिकतापूर्ण सद्गुणयुक्त सत्य और एक सर्वोच्च आदर्श की स्थापना करे, वास्तव में वही ज्ञान शुभ ज्ञान है।

काण्ट के अनुसार शुभ वह है जो कर्तव्य और नैतिक नियमों के अनुसार किया जाय; सद्भावना ही सर्वोच्च शुभ है। तात्पर्य यह है कि ऐसे कर्म, ऐसे ज्ञान, ऐसे विचार ही शुभता के अन्तर्गत आ सकते हैं जो मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने में मदद करें। आत्मिक विकास और चरित्र निर्माण में सहायक हों। व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण और विकास का साधन हों।

पाश्चात्य दार्शनिक जार्ज एडवर्ड मूर के अनुसार “शुभ अपरिभाष्य है। इसका साक्षात् ज्ञान तो हो सकता है किन्तु इसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यह अनभिव्यक्त और अपरिभाष्य है। स्पष्टतः यह अन्तःप्रज्ञा का विषय है। मूर के अनुसार शुभ अपरिभाष्य है, शुभ वस्तु नहीं। क्योंकि शुभ वस्तु का विश्लेषण हो सकता है। शुभ सरल गुण है परन्तु शुभ वस्तु सरल गुण नहीं। अतः शुभ अपरिभाष्य किन्तु शुभ वस्तु परिभाष्य है।”³

श्री अरविन्द के अनुसार शुभ, अशुभ का अभाव है। धर्म, दया, अहिंसा, निःस्वार्थ कर्म ये सभी शुभ के गुण हैं। ऋग्वेद में श्री श्रेयस और प्रेयस की बात कही गयी है।

शुभ के विचार पर प्रकाश डालने के पश्चात् हम इसके विपरीत परिस्थिति अशुभ पर विचार करेंगे। जैसा कि पहले यह बात स्पष्ट हो चुके हैं कि शुभ के विपरीत गुणों को धारण करने वाला अशुभ होता है। अशुभ शुभ का अभाव है। मनुष्य जीवन शुभ-अशुभ, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, हिंसा-अहिंसा आदि का समन्वय है। यह सम्पूर्ण जगत विसंगतियों में पूर्ण सामंजस्य को समेटे हुए हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि अशुभ की उत्पत्ति कैसे हुई? इसका कारण क्या है? जब एक तरफ हम अपने आप को ईश्वर का अंश समझते हैं और ईश्वर अपने आप में एक पूर्ण इकाई है-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णोत्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥⁴

तो फिर यह अपूर्णता यह दुःख, यह अभाव कहाँ से आया है? हम सब ईश्वर की सन्तान हैं तो ईश्वर हमें दुःख क्यों देता है? ईश्वरवादी सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर से उत्पन्न स्वीकार करते हैं तो फिर ईश्वर ने अशुभ को उत्पन्न किया है? यदि उत्पन्न किया तो इसका क्या उद्देश्य है?

अगस्टाइन ने अपने लेख “The Origin of Evil in Nature” में अशुभ की उत्पत्ति की व्याख्या करते हुए कहा है कि मानव ईश्वर के गुणों का निरादर करता है तथा भौतिक वस्तुओं में ही लिप्त रहता है। ये भौतिक पदार्थ ही हमारे अशुभों का मूल कारण है। इसके अतिरिक्त इसके अनुसार यदि हम विश्व को एक मान लें तो हमें अशुभ का बाह्य ज्ञान नहीं हो सकता है। अशुभ का ज्ञान मानव के सीमित ज्ञान का फल है। एक ही वस्तु जिसे हम एक विशेष दृष्टिकोण से अशुभ की संज्ञा देते हैं, यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखी जाय तो शुभ है। आगस्टाइन के अनुसार अशुभ का अर्थ भ्रष्टाचार है। अर्थात् ऐसी कोई वस्तु जिसे अपवित्र किया गया है तो तात्पर्य यह है कि वह स्वयं में जीवित है, शुभ है। इस प्रकार आगस्टाइन के अनुसार “प्रत्येक वस्तु मूलतः शुभ है। जिसे मानव का अपना दृष्टिकोण अशुभ बना डालता है।”⁵

इस प्रकार एक ही वस्तु परिस्थिति और दृष्टिकोण बदलने के कारण शुभ और अशुभ हो सकता है। उदाहरण के लिए एक मिठाई स्वस्थ व्यक्ति के लिए शुभ है किन्तु एक शूगर के रोगी व्यक्ति के लिए अशुभ है। अतः एक ही मिठाई दो परिस्थितियों में शुभ और अशुभ है।

भगवद्गीता में बाहरी अशुभ के साथ-साथ आन्तरिक बुराई, ज्ञान की अशुद्धि और आत्मिक उन्नति के विपरीत गुणों को भी अशुभ की संज्ञा दी गयी है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत्॥⁶

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्⁷

कुछ निराशावादी कहते हैं कि यह समस्त संसार अशुभ और दुःख से भरा हुआ है। यहाँ सुख के लिए कोई स्थान नहीं है। विलियम जेम्स तो यहाँ तक कहते हैं कि “अशुभ की उपस्थिति एक चट्टान है जिससे सभी प्रकार के अद्वैतवाद नष्ट हो जाते हैं।”⁸

अशुभ के लिए श्रीअरविन्द का आशावादी दृष्टिकोण है। उनके अनुसार जीवन में सुख का कुल परिणाम दुःख के कुल परिणाम से बहुत अधिक है। इसका वास्तविक कारण यही है कि सुख हमारी सामान्य अवस्था है, इसलिए जब तक वह अपना कोई ऐसा रूप न धारण कर ले जो सामान्यवस्था से तीव्र प्रगाढ़ हो, सुख की कोई उठी हुई तरंग हो, हर्ष या उल्लास का ऊँचा उठा हुआ शिखर हो, तब तक हम उसे महत्व नहीं देते।⁹

प्रश्न उठता है कि मंगलमय और सच्चिदानंद स्वरूप ईश्वर अशुभ को क्यों उत्पन्न करता है? ईश्वर क्यों अमंगल का कारण है? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीअरविन्द अपनी आशावादी और सार्वभौम दृष्टि अपनाते हैं और कहते हैं कि “उसके लिए सीमित और व्यक्तिगत दृष्टिकोण दोषी है।” उनके अनुसार “मानव विचार जो सम्पूर्ण प्रकृति पर नैतिक अर्थ ला देने का प्रयत्न करता है वह उसके स्वेच्छाचारी हठीले और अपने आपको संभ्रम में डालने वाले कर्मों में अन्यतम कर्म है, यह मनुष्य का अपने आपको, अपने सीमित चिर अभ्यस्त मानव स्वरूप को समस्त पदार्थों में देखने और उसने जो अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण बनाया हुआ है उससे उनका निर्णय करने का एक दयनीय प्रयास है। ये कर्म और प्रयास उसे यथार्थ ज्ञान और पूर्ण दृष्टि को प्राप्त करने से अत्यन्त प्रबलता के साथ रोकते हैं।”¹⁰

नैतिकता परमसत् का नहीं मानव जीवन का विलक्षण वैशिष्ट्य है। निरपेक्ष सत् तो अतिनैतिक है। भौतिक प्रकृति, पशु प्रकृति या प्राण प्रकृति से सब निनैतिक है। पशुओं में दुःख की चेतना है अशुभ की नहीं, परन्तु मनुष्य में शुभ और अशुभ दोनों की चेतना होती है जिससे वह नैतिक कहलाता है। अतः मनुष्य भौतिक अशुभ और मानसिक अशुभ दोनों से पीड़ित है।

श्रीअरविन्द के शब्दों में, “नैतिकता क्रम विकास में एक भूमिका है, जो तत्त्व समस्त भूमिकाओं में समान रूप से विद्यमान है, वह है सच्चिदानंद की आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रेरणा। यह प्रेरणा आरम्भ में निनैतिक होती है, पशु में अवनैतिक हो जाती है, फिर मनुष्य (बुद्धिधारी जीव) में नैतिकता विरोधी भी हो जाती है। मनुष्य अभी भी केवल अर्धनैतिक है और जैसे हमसे नीचे की समस्त भूमिकाएँ अवनैतिक है ठीक उसी प्रकार हमसे ऊपर भी एक ऐसी भूमिका हो सकती है, जहाँ अन्त में हम अवश्य पहुँचेंगे जो अतिनैतिक हो, जिसे नैतिकता की आवश्यकता न हो।”¹¹

जैसे भौतिक तत्त्व प्राण और मन सच्चिदानंद की अभिव्यक्ति है वैसे ही सुख, दुःख व अशुभ आनन्द जगत् में सच्चिदानंद की आत्माभिव्यक्ति के परिणाम है। चूँकि परमसत् ने स्वयं को जगत् में पूर्णतः अभिव्यक्ति नहीं किया है इसलिए जगत् एवं मानव जीवन के सम्बन्ध में यह विरोध है। यह अशुभ विकास की उच्चतर भूमिका में शुभ के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

अशुभ के प्रकार

अब प्रश्न यह उठता है कि अशुभ के कितने प्रकार हैं? कुछ विद्वान दो प्रकार मानते हैं, कुछ तीन प्रकार मानते हैं। मुख्य रूप से दो ही हैं- (1) प्राकृतिक अशुभ (2) नैतिक अशुभ।

प्राकृतिक अशुभ- प्राकृतिक अशुभ वह अशुभ है जिसे प्रकृति द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जैसे बाढ़, भूकम्प, प्लेग, मृत्यु आदि प्राकृतिक अशुभ है। ये आवश्यक अशुभ कहे जाते हैं। ज्वालामुखी का फटना सभी प्राणियों के लिए घातक है। अतः प्राकृतिक नियम ही प्राकृतिक अशुभों का कारण है। प्रकृति स्वयं उन व्यक्तियों को जन्म देती है जो प्राकृतिक अशुभ के आधार माने जाते हैं।

नैतिक अशुभ- नैतिक अशुभ मनुष्य के द्वारा उत्पन्न होते हैं। नैतिक अशुभ का कारण एक प्रकार से प्राकृतिक अशुभ ही है। इस बात को सिद्ध करते हुए गैलवे तर्क देते हैं कि मानव का यह स्वभाव है कि वह अपने संवेगों, इच्छाओं तथा अभिलाषाओं की पूर्ति चाहता है। परन्तु प्राकृतिक नियम उसके रास्ते में बाधक बनकर आते हैं और इस प्रकार उसके इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। फलस्वरूप वह कुछ ऐसे कर्मों को करने के लिए बाध्य होता है जिन्हें अनैतिक की संज्ञा देते हैं। इन अनैतिक कर्मों के कारण मानव अनेक अशुभों का शिकार होता है। जैसे बाढ़ या भूकम्प के कारण किसी

व्यक्ति का सब कुछ नाश हो जाता है और वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुचित कर्म करता है, जैसे-चोरी, डकैती आदि। परन्तु अनुचित कर्मों का फल भी उस व्यक्ति को अवश्य मिलता है- उसे उनका दंड भी मिलता है और इसे ही एक नैतिक अशुभ कहते हैं।¹²

इस प्रकार यदि देखा जाय तो अशुभ की समस्या वास्तव में ईश्वरवादियों के समक्ष प्रकट होती है। दूसरी तरफ अनीश्वरवादी और प्रत्यक्षवादियों के लिए ये कोई समस्या ही नहीं है। ईश्वरवादियों ने अशुभ के लिए विभिन्न तर्क प्रस्तुत किए हैं। ईश्वरवादियों के लिए अशुभ (1) अपूर्ण शुभ है, (2) यह पूर्णता प्राप्ति में सहायक है, (3) शुभ के महत्व को प्रतिपादित करता है, (4) कर्म-सिद्धांत की स्थापना करता है, आदि। इस प्रकार भिन्न-भिन्न तर्कों द्वारा अशुभ को आवश्यक माना गया है।

इस प्रकार निष्कर्षतः अशुभ की समस्या एक दृष्टिकोण है। प्रत्येक विचारक की एक दृष्टि है और वह अपनी दृष्टि से उस समस्या को देखकर अपना मत प्रस्तुत करता है। अशुभ के प्रति विभिन्न विद्वानों का दृष्टिकोण जहाँ एक तरफ कुछ सिद्धान्तों की स्थापना करता है वहीं दूसरी ओर एक नए विपरीत विचारों को जन्म भी देता है। तर्क और कुतर्क के जाल में छनकर प्रस्तुत होने वाले विचार सदैव विचारणीय हैं। यह अशुभ अपने आप में एक ऐसा दृष्टिकोण है जो सदैव कल्पना और वास्तविकता के बीच में रहकर विचारों के धागों से जाल बुनता है।

सन्दर्भ:

1. उपनिषद्, महाभारत आदि भारतीय परम्परा में प्रचलित
2. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 115, श्लोक 23
3. सिंह, बी.एन. नीतिशास्त्र. मोतीलाल बनारसीदास. पृ० 2
4. इशावास्योपनिषद्, (शान्तिपाठ). गीता प्रेस
5. वर्मा, मुरारी प्रसाद. धर्म दर्शन.
6. गीता, 16.21. गीता प्रेस
7. गीता, 16.4. गीता प्रेस
8. दूबे, उमेश चन्द्र. श्री अरविन्द और ब्रैडले का परमतत्त्ववाद, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस. पृ० 70
9. दिव्यजीवन, प्रथम भाग. श्री अरविंदो आश्रम. पृ० 156
10. दिव्यजीवन, प्रथम भाग. श्री अरविंदो आश्रम. पृ० 160
11. दिव्यजीवन, प्रथम भाग. श्री अरविंदो आश्रम. पृ० 162
12. वर्मा, मुरारी प्रसाद. धर्मदर्शन. पृ० 136